|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

## || श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग**

2/2 (श्लोक 5-20), रविवार, 07 जून 2026

**विवेचक: गीता प्रवीण ज्योति जी शुक्ला**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/OHGw9VTdNYQ

# आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध

सुमधुर प्रार्थना, देश भक्ति गीत, श्रीहनुमान चालीसा पाठ, वैदिक सनातन धर्म के अनुसार दीप प्रज्वलन एवं गुरु वन्दना के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ।

आज हम पन्द्रहवें अध्याय के विवेचन के लिए एकत्रित हुए हैं। हम सब बहुत भाग्यशाली हैं जो गीताजी की इस यात्रा में सतत लगे हुए हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं जो इस में जुड़ तो जाते हैं पर बीच में ही उनकी यात्रा छूट जाती है। वे निरन्तरता और सतता नहीं बनाये रख पाते। हमें केवल भोजन करने, खेलने-कूदने और पढ़ने- लिखने में ही समय व्यतीत नहीं करना है। हमें अपने कल्याण के लिए भी कुछ करना चाहिये। जब हम किसी अच्छे कार्य से जुड़ते हैं तो उसमें हमें निरन्तरता बनाये रखनी चाहिये। आप सभी ने यह गीत सुना होगा।

**देश हमें देता है सब कुछ,**
**हम भी तो कुछ देना सीखें।**

हम देश से और समाज से इतना कुछ लेते हैं तो उन्हें भी हमें कुछ देना चाहिये। हम देने योग्य तभी होंगे, जब हम में कुछ योग्यता होगी। यह पात्रता, यह योग्यता तभी आयेगी जब हम ज्ञान अर्जन करेंगे और अच्छे कार्य करेंगे।

हमें गीताजी का अध्ययन करने का यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है तो हमें इसका उपयोग करना चाहिये। प्रतिदिन हमें कक्षा में जुड़ना है, यह नियम पक्का बना लेना चाहिये। हमें विवेचन सत्र से जुड़ना चाहिये। हमें भले ही सारी बातें समझ में न आयें, यदि एक बात भी समझ में आ गयी और उसे हमने जीवन में अपना लिया तो उससे हमारा कल्याण हो जायेगा। केवल श्लोक के अर्थ समझने से उसका लाभ नहीं होगा। उसको जब हम जीवन में लाएँगे तभी उसका लाभ हमें मिलेगा। जैसे हमने बारहवें अध्याय में बहुत सारी बातें सीखी थीं-

**हमें अद्वेष्टा बनना है,**
**किसी से भी घृणा नहीं करनी है।**
**किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये।**
**किसी के लिए बुरा नहीं सोचाना चाहिये।**

हमने भक्त के उन्तालीस लक्षण देखे थे, उनमें से किसी एक लक्षण को भी क्या आपने अपने जीवन में उतारना शुरू किया? हम अर्थ इसलिए समझ रहे हैं कि हमें केवल ज्ञानी ही नहीं बनना है अपितु इन बातों को समझ कर अपने जीवन में उतारने का प्रयास करना है। हमें हमारे जीवन को अच्छा बनाना है। कहाँ पर क्या निर्णय लें? हमारे लिए क्या अच्छा है, क्या बुरा है? यह बात हमें समझ में आनी चाहिये।

पिछले सत्र में हमने इस संसार का संरचना कैसी है, यह समझने का प्रयास किया था। जैसे हमारे विद्यालय में (hierarchy) श्रेणीबद्ध वर्गीकरण होता है। एक मुख्य अध्यापक (प्रिंसिपल) और अनेक शिक्षकगण होते हैं, विद्यार्थी होते हैं। इसी प्रकार संसार में भी श्रेणीबद्धता है जिसमें सबसे पहले श्रीभगवान् हैं।

उल्टे पेड़ के उदाहरण के द्वारा हमने इस बात को समझने का प्रयास किया था, जिस की जड़ें ऊपर की ओर हैं और पत्ते नीचे की ओर। पेड़ की जड़, नींव श्रीभगवान् हैं, तना या आधार सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी हैं फिर देवता आते हैं, उसके बाद हम मनुष्य आते हैं, फिर त्रियक योनियाँ आती हैं।

अब आगे के श्लोकों में हम श्रीभगवान् की शक्तियों के बारे में जानने और समझने का प्रयास करेंगे।

**15.5**

**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।**
**द्वन्द्वैर्विमुक्ताः(स्) सुखदुःखसञ्ज्ञैः(र्), गच्छन्त्यमूढाः(फ्) पदमव्ययं(न्) तत्।।5।।**

जो मान और मोह से रहित हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है, जो नित्य-निरन्तर परमात्मा में ही लगे हुए हैं, जो (अपनी दृष्टि से) सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो गये हैं, जो सुख-दुःख नाम वाले द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं, (ऐसे) (ऊँची स्थिति वाले) मोह रहित साधक भक्त उस अविनाशी परमपद (परमात्मा) को प्राप्त होते हैं।

**विवेचन**- यहाँ श्रीभगवान् बताते हैं कि हमें "**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाः**" बनना चाहिये। श्रीभगवान् कहते हैं कि जिनका मान और मोह समाप्त हो गया है, ऐसे मनुष्य उन्हें अत्यन्त प्रिय होते हैं।

**मान का क्या अर्थ?**
मान अर्थात् घमण्ड। जब हम यह सोचते हैं कि मैं ही सब कुछ हूँ, मुझे बहुत कुछ आता है, मेरे पास यह है, मेरे पास वह है तो यह मान कहलाता है। हम अपने भीतर बहुत अधिक गर्व का भाव रखते हैं, इसे ही मान कहते हैं।

जैसे हम कहते हैं-
'मैं ही सबसे अच्छा हूँ। कक्षा में मेरे से आगे कोई नहीं जा सकता। मैं हमेशा प्रथम आता हूँ। तुम्हें पता है, मुझे पूरे अङ्क मिले हैं। मुझे इसमें उत्कृष्ट श्रेणी प्राप्त हुई है। मेरी चित्रकला के सामने किसी की चित्रकला नहीं चलती। मैं इतना अच्छा चित्र बनाता हूँ। इस प्रकार का जो व्यवहार और भाव होता है, वही मान अथवा घमण्ड है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिनका मान और मोह दूर हो गया है वे उन्हें अत्यन्त प्रिय होते हैं। यहाँ श्रीभगवान् ऐसे लोगों के गुण बता रहे हैं जो उनके सबसे प्रिय बन जाते हैं।

यदि हम भी यह दिखाने लगें कि मैं ही सब कुछ हूँ, मुझे सब कुछ आता है, मुझे बहुत सारे श्लोक याद हैं, मुझे उनके अर्थ भी पता हैं तो इसका अर्थ है कि हमारे भीतर बहुत अधिक मान आ गया है अर्थात् हमें अपने ऊपर अत्यधिक गर्व हो गया है कि मैं ही सब कुछ हूँ, मैं बहुत ज्ञानी हूँ। यह अच्छी बात नहीं है। यदि हम ऐसा करेंगे तो श्रीभगवान् के प्रिय नहीं बन सकते।

**यदि हमें श्रीभगवान् का मित्र बनना है,**
**उनके प्रियजनों की सूची में आना है**

**तो**
**हमें इस अहङ्कार को दूर करना होगा।**

हमारे भीतर ऐसा भाव नहीं होना चाहिये। यदि आप में से कोई यह सोचता है कि मैं तो कक्षा में प्रथम आता हूँ, मैं तो हर प्रतियोगिता में शीर्ष स्थान प्राप्त करता हूँ, मैं ऐसा करता हूँ, मैं वैसा करता हूँ, तो इस प्रकार की भावना को छोड़ना होगा।

**इसे कैसे छोड़ेंगे?**

अब से जब भी हम कोई उपलब्धि प्राप्त करें, चाहे विद्यालय में या कहीं और, परिवार में या किसी अन्य स्थान पर तो हमें उसका घमण्ड नहीं करना चाहिये और न ही अहङ्कार दिखाना चाहिये।

यह बताने में कोई समस्या नहीं है कि मैं प्रथम आया हूँ या मैंने अच्छा कार्य किया है। बताने में कोई कठिनाई नहीं है किन्तु उसका प्रदर्शन करना और अहङ्कार के साथ कहना उचित नहीं है। यदि हमारे भीतर बहुत अधिक गर्व का भाव आ जाये और हमें ऐसा लगने लगे कि यह तो केवल मैं ही कर सकता हूँ। दूसरों को देखो, कोई दूसरे स्थान पर है, कोई सातवें स्थान पर है, कोई दसवें स्थान पर है तो यह उचित नहीं है।

**मोह का क्या अर्थ है?**

मोह का अर्थ है मेरा-मेरा करना। जैसे हम कहते हैं- यह मेरा फोन है, यह मेरा बैग है, यह मेरा पेन है, यह मेरी कॉपी है, यह मेरी पुस्तक है। इतना ही नहीं, विद्यालय में जो हमारी बेंच या सीट होती है, उस पर भी कई बार हम व्हाइटनर से अपना नाम लिख देते हैं या कोई चिह्न बना देते हैं और कहते हैं कि यह मेरी सीट है, इस पर कोई नहीं बैठ सकता। कई बार तो हम समय से पहले विद्यालय पहुँच जाते हैं ताकि हमें पहली सीट मिल जाये या अपनी मनपसन्द सीट प्राप्त हो जाये।

कुछ बच्चे बहुत समझदार होते हैं। वे आपस में समझौता कर लेते हैं कि ठीक है, तुम पहली सीट पर बैठ जाओ, मैं दूसरी पर बैठ जाता हूँ। वैसे भी मुझे पहली-दूसरी सीट से कोई विशेष मतलब नहीं है, मैं पाँचवीं सीट पर बैठ जाऊँगा। ऐसे बच्चे आपस में समझदारी से अपनी सीटें निर्धारित कर लेते हैं किन्तु कुछ बच्चे कहते हैं नहीं, जो पहले आया, सीट उसी की होगी। फिर वे कहते हैं अरे, यह तो मेरी सीट है देखो, यहाँ मेरा नाम लिखा है।

**मेरा-मेरा करने की प्रवृत्ति मोह कहलाती है।**
**वास्तव में हमारा कुछ नहीं है।**
**सब कुछ श्रीभगवान् का है**
**किन्तु**
**हम उसे अपना समझ लेते हैं।**

विद्यालय की सीट हमारी थोड़े ही है, फिर भी हम कहते हैं यह मेरी सीट है। मैं पहले आया था इसलिए यह मेरी है, तुम यहाँ नहीं बैठ सकते। ऐसा कहना उचित नहीं है। यह भ्रम हो जाना कि यह सब कुछ मेरा है, यह घर मेरा है, यह मेरा बैग है, यह मेरी टी-शर्ट है, यह मेरे जूते हैं; मोह कहलाता है। श्रीभगवान् कहते हैं-

"**जितसङ्गदोषाः**"
**अर्थात् जिन्होंने सभी आसक्तियों को जीत लिया है।**

ऐसे व्यक्ति को किसी वस्तु से विशेष लगाव नहीं रहता कि यह मेरी शर्ट है, यह मेरा बैग है, यह मेरी बोतल है, यह मेरा चश्मा है, यह मेरा पेन है। उन्होंने मेरा-मेरा करना छोड़ दिया है। यदि कोई उनका पेन भी ले लेता है तो वे रोने नहीं लगते। वे यह नहीं कहते कि यह मेरा पेन है, इसका उपयोग मत करो या यह मेरी प्रिय पोशाक है, इसे मत पहनना।

श्रीभगवान् बताते हैं कि जो लोग हर समय मेरा-मेरा करते रहते हैं, वे उन्हें प्रिय नहीं होते। फिर श्रीभगवान् कहते हैं-

"**अध्यात्मनित्याः**"
**अर्थात् जो निरन्तर श्रीभगवान् का स्मरण करते रहते हैं।**

इसके बाद श्रीभगवान् कहते हैं-

**"विनिवृत्तकामाः" अर्थात् जिनकी कामनाएँ समाप्त हो गई हैं।**

हमारे मन में अनेक इच्छाएँ होती हैं। मुझे यह चाहिए, वह चाहिये, यह वीडियो गेम चाहिये, यह खिलौना चाहिये, यह पेंसिल चाहिये, यह पेन चाहिये, यह साइकिल चाहिये, यह फोन चाहिये। इस प्रकार हमारी इच्छाओं की सूची बहुत लम्बी होती जाती है।

**श्रीभगवान् कहते हैं कि उन्हें वे ही प्रिय हैं**
**जिसकी अनावश्यक इच्छाएँ समाप्त हो गई हैं।**

अभी हम छोटे हैं इसलिये सभी इच्छाओं को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकते किन्तु उन्हें नियन्त्रित अवश्य कर सकते हैं। यदि हमारे पास पहले से बैग है, पर्याप्त वस्त्र हैं तो हम यह नियन्त्रण कर सकते हैं कि बार-बार नई-नई इच्छाएँ न करें। जैसे मेरे पास नीले रङ्ग का बैग है, अब मुझे लाल रङ्ग का चाहिये; अब काला चाहिये। मेरे पास गुलाबी रङ्ग का बॉक्स है, अब मुझे पीले रङ्ग का चाहिये, अब मुझे तोते के रङ्ग वाला चाहिये। जो आवश्यक है, उसे लेना ही होगा। यदि पेन समाप्त हो गया है तो नया पेन लेना आवश्यकता है परन्तु हमारे पास पहले से बहुत सारे पेन हैं और फिर भी हम केवल सङ्ग्रह करने के लिए अलग-अलग प्रकार और ब्राण्ड के पेन चाहते हैं तो यह अतिरिक्त इच्छा है।

**श्रीभगवान् कहते हैं कि जो बहुत लालची होते हैं,**
**वे उन्हें प्रिय नहीं होते।**

यदि हमें श्रीभगवान् का प्रिय बनना है और उन्हें अपना मित्र बनाना है तो हमें लालच छोड़ना होगा और अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना होगा।

**आगे श्रीभगवान् कहते हैं-**

**"द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैः।"**
अर्थात् जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं। जब कोई बात हमारे मन के अनुसार हो जाती है तो हम बहुत प्रसन्न हो जाते हैं और जब हमारे मन के अनुसार नहीं होती तो हम दुःखी हो जाते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि जो इन दोनों स्थितियों में समान रहता है, मन के अनुसार हो जाए तो भी ठीक और न हो तो भी ठीक, वही वास्तव में द्वन्द्वों से मुक्त है।

ऐसे व्यक्ति को इस बात से अधिक अन्तर नहीं पड़ता कि कार्य उनके मन के अनुसार हुआ या नहीं हुआ। हमें भी ऐसा बनने का प्रयास करना चाहिये। हम तत्काल  ऐसे नहीं बन सकते किन्तु धीरे-धीरे प्रयास करके अवश्य बन सकते हैं।

- **"द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर् गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।"**

श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि ऐसे लोग उन्हें अत्यन्त प्रिय होते हैं और अन्ततः वो श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेते हैं। हमें श्रीभगवान् का मित्र बनना है तो इन बातों का पालन करना होगा।

**15.6**

## न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
## यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम।।6।।

उस (परमपद) को न सूर्य, न चन्द्र (और) न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है (और) (जिसको) प्राप्त होकर जीव लौट कर (संसार में) नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

**विवेचन**- श्रीभगवान् बताते हैं कि हमें जिनका प्रिय भक्त बनना है, वे स्वयं कैसे हैं? हमने यह तो जान लिया कि श्रीभगवान् का

प्रिय कैसे बनना है परन्तु जिनका प्रिय बनना चाहते हैं, वे कैसे हैं? उनके पास कैसी-कैसी दिव्य शक्तियाँ हैं? यह भी जानना आवश्यक है। श्रीभगवान् आगे के श्लोकों में अपने स्वरूप और अपने परम धाम का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीभगवान् यहाँ कहते हैं कि जैसे चन्द्रमा का प्रकाश होता है और सूर्य का प्रकाश होता है पर ये दोनों श्रीभगवान् के परम धाम को प्रकाशित नहीं कर सकते। जैसे हमारे घरों को प्रकाश की आवश्यकता होती है और हम उन्हें दीपक, बिजली या सूर्य तथा चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं पर श्रीभगवान् के परम धाम को किसी बाहरी प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मेरे परम धाम को प्रकाशित करने के लिए न किसी दीपक की आवश्यकता है, न किसी विद्युत् प्रकाश की, न चन्द्रमा की और न ही सूर्य की। मेरा परम धाम स्वयं ही प्रकाशमय है। वहाँ किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वहाँ स्वयं श्रीभगवान् विराजमान हैं। उनके दिव्य तेज से सम्पूर्ण धाम प्रकाशित रहता है।

श्रीभगवान् आगे कहते हैं कि जो जीव उस परम धाम को प्राप्त कर लेता है उसे फिर इस संसार में लौटकर नहीं आना पड़ता। उसे पुनः जन्म और मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ना पड़ता।

इस संसार में जीव बार-बार जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद पुनः जन्म यह क्रम चलता रहता है परन्तु जो जीव श्रीभगवान् के परम धाम को प्राप्त कर लेता है, वह इस जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है। तब उसे यह चिन्ता नहीं रहती कि अगले जन्म में वह क्या बनेगा। मनुष्य बनेगा, पशु बनेगा, स्त्री बनेगा, पुरुष बनेगा, वृक्ष बनेगा अथवा किसी अन्य योनि में जन्म लेगा, ऐसे सभी प्रश्न समाप्त हो जाते हैं क्योंकि उसे श्रीभगवान् का परम धाम प्राप्त हो जाता है।

**श्रीभगवान् इस श्लोक में अपने परम धाम की महिमा बताते हुए कहते हैं कि वह स्वयं प्रकाशस्वरूप है और वहाँ पहुँचने वाले जीव को पुनः संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। साथ ही, जहाँ स्वयं श्रीभगवान् विराजमान हों, वहाँ किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता भी नहीं रहती।**

**15.7**

**ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।**
**मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।**

इस संसार में जीव बना हुआ आत्मा (स्वयं) मेरा ही सनातन अंश है; (परन्तु वह) प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।

**विवेचन-** अब श्रीभगवान् कहते हैं-
"**ममैवांशो जीवलोके**"
अर्थात् इस संसार में जितने भी जीव हैं वे सभी मेरे ही अंश हैं। प्रत्येक जीव का सम्बन्ध श्रीभगवान् से है इसलिये श्रीभगवान् यहाँ जीवों और अपने बीच के दिव्य सम्बन्ध को बता रहे हैं।

अब श्रीभगवान् अपनी विभूतियों और शक्तियों का परिचय दे रहे हैं। यदि हम किसी को अपना मित्र बनाना चाहते हैं तो पहले उसके गुणों को जानने का प्रयास करते हैं। हम देखते हैं कि वह कैसा है, उसका स्वभाव कैसा है, उसमें कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं। उसी प्रकार यदि हमें श्रीभगवान् का प्रिय बनना है, तो हमें उनके स्वरूप, उनकी महिमा और उनकी विभूतियों को भी जानना चाहिये। इससे हमारे मन में उनके प्रति और अधिक प्रेम तथा आकर्षण उत्पन्न होता है। **श्रीभगवान् कहते हैं-**
**"जीवभूतः सनातनः"**
अर्थात् यह जीवात्मा सनातन है। जीवात्मा अर्थात् आत्मा, जिसे अंग्रेज़ी में Soul कहते हैं।

यह जो दिखाई देता है, वह शरीर है और उसके भीतर जो चेतना है, वह आत्मा है। जैसे एक बल्ब होता है, जब तक उसमें विद्युत प्रवाहित होती रहती है तब तक वह प्रकाश देता है। यदि विद्युत न हो तो बल्ब किसी काम का नहीं रहता। उसी प्रकार

यह शरीर भी आत्मा के कारण ही कार्य करता है। यदि आत्मा शरीर में न हो तो शरीर निष्प्राण हो जाता है और कोई कार्य नहीं कर सकता।

आत्मा शरीर को चेतना प्रदान करती है। श्रीभगवान् यहाँ बताते हैं कि यह आत्मा सनातन है। सनातन का अर्थ है जो सदा से है, जिसका कभी जन्म नहीं होता और जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती।

यह शरीर जन्म लेता है और एक दिन नष्ट भी हो जाता है। जब कोई हमारी जन्मतिथि पूछता है या हमारी आयु पूछता है तब हम अपने शरीर के जन्म की बात बताते हैं, आत्मा के जन्म की नहीं। आत्मा की कोई जन्मतिथि नहीं होती क्योंकि उसका कभी जन्म ही नहीं हुआ। आत्मा न तो जन्म लेती है और न ही मरती है। वह केवल एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। जब आत्मा इस शरीर को छोड़ देती है तब यह शरीर मृत कहलाता है इसलिये आत्मा शाश्वत है जबकि शरीर नश्वर है।

इसी तथ्य को श्रीभगवान् "**जीवभूतः सनातनः**" शब्दों के माध्यम से समझाते हैं कि आत्मा सदैव से है और सदैव रहेगी।

इसके बाद श्रीभगवान् कहते हैं-
"**मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**"
यहाँ श्रीभगवान् बताते हैं कि जीवात्मा मन और इन्द्रियों के साथ मिलकर कार्य करती है। इन्द्रियाँ पाँच हैं- आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा; इन्हीं के माध्यम से हम संसार का अनुभव करते हैं। आँखों से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, नाक से गन्ध ग्रहण करते हैं, जीभ से स्वाद लेते हैं और त्वचा से स्पर्श का अनुभव करते हैं।

**पाँच इन्द्रियों के साथ मन छठा साधन माना गया है।**

आत्मा इन इन्द्रियों और मन के माध्यम से संसार के विषयों का अनुभव करती है और कार्य करती है। यदि मन सहयोग न करे तो इन्द्रियाँ भी ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर पातीं।

**श्रीभगवान् इस श्लोक में बताते हैं कि प्रत्येक जीव उनका सनातन अंश है।**

**आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है,**

**मन तथा इन्द्रियों के साथ मिलकर इस संसार में कार्य करती है**।

**15.8**

## शरीरं(यँ) यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
## गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्॥15.8॥

जैसे वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को (ग्रहण करके ले जाती है), ऐसे ही शरीरादि का स्वामी बना हुआ जीवात्मा भी जिस शरीर को छोड़ता है, (वहाँ से) इन (मन सहित इन्द्रियों) को ग्रहण करके फिर जिस (शरीर) को प्राप्त होता है, (उसमें) चला जाता है।

**विवेचन-** यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक है। श्रीभगवान् यहाँ बताते हैं कि जब जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाती है तब वह अकेली नहीं जाती बल्कि अपने साथ कुछ और भी लेकर जाती है।

इसे एक उदाहरण से समझते हैं। जब हम किसी बगीचे में जाते हैं, वहाँ अनेक प्रकार के पुष्प खिले होते हैं और उनकी सुगन्ध चारों ओर फैलती रहती है। यदि हम पुष्पों के समीप खड़े हों तो उनकी सुगन्ध स्पष्ट रूप से अनुभव होती है। इतना ही नहीं यदि हम कुछ दूर भी चले जाएँ तब भी वह सुगन्ध हमारे पास पहुँचती रहती है।

ऐसा कैसे होता है? वायु उस सुगन्ध को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। वायु स्वयं दिखाई नहीं देती परन्तु वह पुष्पों की सुगन्ध को अपने साथ लेकर चलती है।

उसी प्रकार श्रीभगवान् कहते हैं कि जब जीवात्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाती है तब वह अपने साथ अपने संस्कार, प्रवृत्तियाँ और वासनाएँ भी लेकर जाती है। जैसे वायु पुष्पों की सुगन्ध को लेकर चलती है, वैसे ही जीवात्मा अपने अर्जित संस्कारों को साथ लेकर आगे बढ़ती है।

हम अपने जीवन में जो कार्य बार-बार करते हैं वे संस्कार बन जाते हैं। यदि हम निरन्तर अच्छे कार्य करते हैं, सत्सङ्ग करते हैं, भगवद्भक्ति करते हैं, श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करते हैं तो उनके संस्कार भी जीवात्मा के साथ रहते हैं। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति निरन्तर बुरे कर्म करता है तो उनके संस्कार भी उसके साथ चले जाते हैं।

इसी कारण हम देखते हैं कि कुछ बालक छोटी आयु में ही असाधारण प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं। कोई बालक कम आयु में ही श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक अध्याय कण्ठस्थ कर लेते हैं, कोई सङ्गीत में निपुण होते हैं, कोई गणित में अत्यन्त कुशल होते हैं और कोई अन्य किसी विशेष विद्या में प्रवीण होते हैं। इसका कारण उनके पूर्वजन्म के संस्कार माने जाते हैं।

किसी ने पूर्वजन्म में किसी विद्या का अभ्यास किया हो तो उसके संस्कार अगले जन्म में भी सहायता करते हैं। इसी प्रकार यदि हमें श्रीभगवान् की भक्ति, गीता-अध्ययन या सत्सङ्ग में रुचि प्राप्त हुई है तो यह भी पूर्व में किये गये शुभ कर्मों और संस्कारों का परिणाम माना जा सकता है इसलिये शास्त्रों में बार-बार अच्छे कर्म करने पर बल दिया गया है। जो शुभ संस्कार हम आज अर्जित करेंगे, वे आगे भी हमारे कल्याण का कारण बनेंगे। यदि हम अच्छे कार्य करेंगे तो भविष्य में भी उन शुभ प्रवृत्तियों का लाभ प्राप्त होगा और यदि हम बुरे कर्मों में लगे रहेंगे तो उनके संस्कार भी आगे हमारे साथ बने रहेंगे।

**हमें सदैव शुभ कर्म, सत्संग, स्वाध्याय,**
**भगवद्भक्ति का आश्रय लेना चाहिये।**
**संस्कार जीवात्मा के साथ आगे भी चलते हैं।**

इसके साथ ही श्रीभगवान् यह भी सङ्केत करते हैं कि जीवात्मा का कार्य मन और इन्द्रियों के सहयोग से होता है। यदि मन किसी विषय में न लगे तो इन्द्रियाँ होते हुए भी हम उस विषय को ठीक प्रकार से ग्रहण नहीं कर पाते।
जैसे कभी-कभी कोई व्यक्ति हमारे सामने से निकल जाता है परन्तु बाद में पूछने पर हमें स्मरण नहीं रहता कि वह वहाँ से गुज़रा था। आँखों ने उसे देखा था किन्तु मन उस समय कहीं और लगा हुआ था इसलिये देखने पर भी हमने वास्तव में उसे ग्रहण नहीं किया।

इसी प्रकार कक्षा में भी ऐसा होता है कि शरीर तो कक्षा में बैठा रहता है किन्तु मन कहीं और विचरण कर रहा होता है। उस स्थिति में शिक्षक की बातें सुनने पर भी ठीक से समझ में नहीं आतीं। इसका कारण यह है कि मन का सहयोग नहीं मिल रहा होता।

इन्द्रियाँ संसार के विषयों को ग्रहण करती हैं परन्तु उनका वास्तविक अनुभव तभी होता है जब मन भी उनके साथ जुड़ा हो। इसलिये श्रीभगवान् बताते हैं कि जीवात्मा मन और इन्द्रियों के माध्यम से संसार का अनुभव करती है।

इस श्लोक में श्रीभगवान् यह समझाते हैं कि जीवात्मा शरीर बदलते समय अपने संस्कारों को साथ लेकर जाती है। जैसे वायु पुष्पों की सुगन्ध को साथ लेकर चलती है। साथ ही, मन और इन्द्रियों के सहयोग से ही जीव संसार के विषयों का अनुभव कर पाता है। यही कारण है कि शुभ संस्कारों का सञ्चय और मन की शुद्धि जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी गई है।

**15.9**

**श्रोत्रं(ञ्) चक्षुः(स्) स्पर्शनं(ञ्) च, रसनं(ङ्) घ्राणमेव च।**
**अधिष्ठाय मनश्चायं(वँ), विषयानुपसेवते॥15.9॥**

यह (जीवात्मा) मन का आश्रय लेकर ही श्रोत्र और नेत्र तथा त्वचा, रसना और घ्राण –(इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा) विषयों का सेवन

करता है।

**विवेचन-** श्रीभगवान् कहते हैं कि जीवात्मा स्वयं कुछ नहीं कर सकती; उसके लिए मन का सहयोग आवश्यक है। यदि हमारा मन किसी विषय में नहीं लगता तो हम बाहरी वस्तुओं को ठीक प्रकार से ग्रहण नहीं कर पाते।

उदाहरण के लिए, कभी-कभी हमारी आँखें किसी व्यक्ति या वस्तु को देख लेती हैं परन्तु बाद में पूछने पर हमें उसका स्मरण नहीं रहता क्योंकि उस समय हमारा मन कहीं और लगा हुआ था। इसी प्रकार कक्षा में बैठते समय शरीर तो वहाँ उपस्थित रहता है परन्तु मन यदि किसी अन्य विषय में लगा हो तो शिक्षक की बात समझ में नहीं आती। **श्रीभगवान् का सरल सन्देश यह है कि-**

**इन्द्रियाँ तभी सही प्रकार से कार्य करती हैं**
**जब मन उनका सहयोग करता है।**

**आँखें सब कुछ देखती हैं परन्तु जिस वस्तु पर मन केन्द्रित होता है, वही वास्तव में हमारे ज्ञान का विषय बनती है इसलिए बाहरी संसार का अनुभव और समझ मन की उपस्थिति पर निर्भर करती है।**

श्रीभगवान् कहते हैं कि जब जीवात्मा शरीर में रहती है, शरीर का त्याग करती है अथवा इन्द्रियों के माध्यम से विषयों का अनुभव करती है तब सामान्य लोग उसे पहचान नहीं पाते। जिनके पास आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, वे शरीर और आत्मा के बीच का अन्तर समझ नहीं पाते। जिनकी ज्ञानरूपी आँखें खुल जाती हैं, वे इस भेद को समझ लेते हैं। वे जान जाते हैं कि शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं तथा शरीर तभी तक कार्य करता है जब तक उसमें आत्मा का निवास है। यह ज्ञानरूपी दृष्टि कैसे प्राप्त होती है?

**जब मनुष्य नियमित रूप से भगवद्गीता का अध्ययन करता है, श्रीभगवान् का स्मरण करता है, पूजा, भजन और अन्य शुभ कार्य करता है तब उसके भीतर ज्ञान का प्रकाश जागृत होने लगता है। धीरे-धीरे उसके ज्ञान-चक्षु खुलते हैं और वह आत्मा, शरीर और श्रीभगवान् तथा उनकी शक्तियों के विषय में यथार्थ समझ प्राप्त कर लेता है।**

इस प्रकार श्रीभगवान् बताते हैं कि आत्मा के स्वरूप को सभी लोग नहीं समझ पाते। उसे वही समझता है जो ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है और अपने जीवन को सत्कर्मों तथा आध्यात्मिक साधना से पवित्र बनाता है।

**15.10**

**उत्क्रामन्तं(म्) स्थितं(वँ) वापि, भुञ्जानं(वँ) वा गुणान्वितम्।**
**विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥15.10॥**

शरीर को छोड़कर जाते हुए या दूसरे शरीर में स्थित हुए अथवा विषयों को भोगते हुए भी गुणों से युक्त (जीवात्मा के स्वरूप) को मूढ़ मनुष्य नहीं जानते, ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले (ज्ञानी मनुष्य ही) जानते हैं

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं कि जब जीवात्मा शरीर को छोड़ती है, शरीर में रहती है अथवा इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करती है, तब सामान्य लोग उसे नहीं पहचान पाते। जिन लोगों के पास ज्ञान नहीं होता, वे शरीर और आत्मा में भेद नहीं कर पाते। वे यह नहीं समझ पाते कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है। जब तक शरीर में आत्मा रहती है, तब तक शरीर कार्य करता है, अन्यथा नहीं करता। इसलिये आत्मा के वास्तविक स्वरूप को सभी लोग नहीं जान पाते।

श्रीभगवान् आगे बताते हैं कि आत्मा को वही लोग समझ पाते हैं जिनके ज्ञानरूपी चक्षु खुल चुके होते हैं। जब मनुष्य को वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है तब वह शरीर और आत्मा के भेद को समझने लगता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए जब वह निरन्तर प्रयास करता है तब उसके भीतर यह समझ विकसित होती है।

यह ज्ञानचक्षु अथवा दिव्यदृष्टि तब विकसित होती है, जब मनुष्य शुभ कर्म करता है, प्रतिदिन गीता जी का अध्ययन करता है, श्रीभगवान् की पूजा करता है, उनका स्मरण करता है तथा भजन-कीर्तन करता है। ऐसी आध्यात्मिक गतिविधियों के द्वारा मनुष्य के ज्ञानचक्षु जागृत हो जाते हैं। तब वह जीवन की अनेक बातों को सही प्रकार से समझने लगता है। उसे आत्मा क्या है, शरीर क्या है, श्रीभगवान् कौन हैं तथा उनकी शक्तियाँ क्या हैं? इसका ज्ञान होने लगता है इसलिये यह तत्त्वज्ञान सभी को प्राप्त नहीं होता। इसे वही लोग समझ पाते हैं जो ज्ञान और साधना के मार्ग पर अग्रसर होते हैं।

**15.11**

**यतन्तो योगिनश्चैनं(म्), पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।**
**यतन्तोऽप्यकृतात्मानो,नैनं(म्) पश्यन्त्यचेतसः।।11।।**

यत्न करने वाले योगी लोग अपने आप में स्थित इस परमात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। परन्तु जिन्होंने अपना अन्तःकरण शुद्ध नहीं किया है, (ऐसे) अविवेकी मनुष्य यत्न करने पर भी इस तत्त्व का अनुभव नहीं करते।

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं कि केवल बाहरी साधना करना ही पर्याप्त नहीं है। मन की शुद्धि और अन्तःकरण की निर्मलता भी उतनी ही आवश्यक है।

हम बहुत अधिक भक्ति करें, जप करें, ध्यान करें, पूजा-पाठ करें तथा अनेक प्रकार की सात्त्विक गतिविधियों का पालन करें फिर भी केवल इन्हीं के आधार पर हम श्रेष्ठ भक्त या योगी नहीं बन जाते। श्रीभगवान् कहते हैं कि सच्चा योगी वही बन सकता है जिसका मन शुद्ध और निर्मल हो।

अर्जुन जैसे भक्त और योगी बनना केवल बाहरी आचरण से सम्भव नहीं है। इसके लिये मन का पवित्र होना आवश्यक है। यदि हमारे मन में दूसरों के प्रति बुरे विचार आते रहें, हम ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, शिकायत और नकारात्मकता से भरे रहें तो केवल पूजा-पाठ करने से हम श्रीभगवान् के प्रिय भक्त नहीं बन सकते।

**इस श्लोक में श्रीभगवान् स्पष्ट रूप से बताते हैं कि जो योगी अपने मन को शुद्ध करने का प्रयास करते हैं, वे अपने भीतर स्थित आत्मा का अनुभव कर लेते हैं। वे समझ पाते हैं कि आत्मा शरीर से भिन्न है और वह उनके भीतर स्थित है।**

**इसके विपरीत, जिनका मन शुद्ध नहीं हुआ है और जो अपने अन्तःकरण को निर्मल बनाने का प्रयास नहीं करते, वे अनेक साधनाएँ करने पर भी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं समझ पाते। उनके लिये आत्मतत्त्व का अनुभव करना कठिन बना रहता है।**

हम अपने जीवन में भी यह देखते हैं कि कुछ लोग बहुत पूजा-पाठ करते हैं किन्तु उनका स्वभाव क्रोधी, चिड़चिड़ा और कटु रहता है। वे दूसरों से प्रेमपूर्वक व्यवहार नहीं कर पाते। इसका कारण यह है कि उन्होंने बाहरी साधना तो की है परन्तु अपने मन को शुद्ध करने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। वहीं कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो भक्ति के साथ-साथ अपने स्वभाव को भी मधुर बनाते हैं। वे विनम्रता से बात करते हैं, दूसरों का सम्मान करते हैं, सबके प्रति सद्भाव रखते हैं और प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हैं। यह उनके शुद्ध और निर्मल मन का परिचायक है।

श्रीभगवान् इस श्लोक में सिखाते हैं कि केवल साधना करना ही पर्याप्त नहीं है अपितु मन की शुद्धि भी आवश्यक है। जब भक्ति, साधना और मन की निर्मलता एक साथ आती है तभी मनुष्य वास्तविक अर्थ में योगी और श्रीभगवान् का प्रिय भक्त बन पाता है।

**15.12**

**यदादित्यगतं(न्) तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।**
**यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ,तत्तेजो विद्धि मामकम्।।12।।**

सूर्य को प्राप्त हुआ जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है (और) जो तेज चन्द्रमा में है तथा जो तेज अग्नि में है, उस तेज को मेरा ही जान।

**विवेचन-** यहाँ श्रीभगवान् अपनी दिव्य शक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सूर्य में जो तेज है और जिससे सम्पूर्ण जगत प्रकाशित होता है वह मेरा ही तेज है। इसी प्रकार चन्द्रमा में जो शीतल प्रकाश है तथा अग्नि में जो प्रकाश और ऊष्मा है, वह भी मेरी ही शक्ति से प्रकाशित और सञ्चालित होते हैं।

**श्रीभगवान् कहते हैं कि सूर्य के पास जो प्रकाश, ऊर्जा और सामर्थ्य है, चन्द्रमा के पास जो प्रकाश और शीतलता है तथा अग्नि के पास जो तेज और ऊष्मा है, वह सब उनकी अपनी स्वतन्त्र शक्ति नहीं है। उन सबका मूल स्रोत वे ही हैं।**

अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिस शक्ति के कारण अपना-अपना कार्य कर रहे हैं, वह शक्ति भी श्रीभगवान् से ही प्राप्त होती है। यदि श्रीभगवान् की शक्ति उन्हें प्राप्त न हो तो वे किसी प्रकार का प्रकाश या तेज प्रदान नहीं कर सकते।

इस प्रकार श्रीभगवान् अर्जुन को समझा रहे हैं कि संसार में जहाँ कहीं भी तेज, प्रकाश, ऊर्जा, सामर्थ्य या दिव्यता दिखाई देती है, उसका मूल आधार परमेश्वर ही हैं। समस्त शक्तियों का वास्तविक स्रोत श्रीभगवान् ही हैं।

**15.13**

**गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।**
**पुष्णामि चौषधीः(स्) सर्वाः(स्), सोमो भूत्वा रसात्मकः।।13।।**

मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ और (मैं ही) रस स्वरूप चन्द्रमा होकर समस्त ओषधियों (वनस्पतियों) को पुष्ट करता हूँ।

**विवेचन-** यहाँ श्रीभगवान् अपनी एक और दिव्य शक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं-
"मैं पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से समस्त प्राणियों को धारण करता हूँ। मैं ही चन्द्रमा के रूप में समस्त वनस्पतियों और औषधियों का पोषण करता हूँ।"

हम अपने चारों ओर देखते हैं कि इस संसार में असङ्ख्य गतिविधियाँ निरन्तर चल रही हैं। पृथ्वी निरन्तर अपनी गति से घूम रही है और सूर्य की परिक्रमा भी कर रही है फिर भी उसका क्रम कभी बाधित नहीं होता। हम पृथ्वी पर चलते हैं, रहते हैं और अपने सभी कार्य करते हैं किन्तु हमें उसकी गति का कोई असन्तुलन अनुभव नहीं होता।

इसी प्रकार प्रतिदिन सूर्य का उदय और अस्त होता है। ऋतुएँ समयानुसार बदलती रहती हैं। वर्षा अपने समय पर होती है, वृक्ष बढ़ते हैं, फल-फूल उत्पन्न होते हैं और सम्पूर्ण प्रकृति एक निश्चित व्यवस्था के अनुसार कार्य करती रहती है। जब हम इस व्यवस्था को देखते हैं तो यह विचार आता है कि इतनी विशाल और सुव्यवस्थित सृष्टि के पीछे कोई न कोई महान शक्ति अवश्य कार्य कर रही है। यह सब अपने-आप नहीं हो रहा है। इस समस्त व्यवस्था को सञ्चालित करने वाली एक परम शक्ति है।

श्रीभगवान् इस श्लोक में बताते हैं कि वह परम शक्ति वे स्वयं हैं।

**पृथ्वी को धारण करने वाली शक्ति,**
**प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाली शक्ति**
**प्रकृति व्यवस्थाओं को चलाने वाली शक्ति**
**श्रीभगवान् की ही है।**

इसके साथ ही श्रीभगवान् कहते हैं कि वे चन्द्रमा के रूप में समस्त औषधियों, वनस्पतियों, वृक्षों और अन्न का पोषण करते हैं। पृथ्वी पर जो अन्न, फल, फूल और औषधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा जिनसे समस्त जीवों का जीवन चलता है, उनके पोषण के पीछे भी श्रीभगवान् की ही शक्ति कार्य करती है।

इस श्लोक में श्रीभगवान् यह समझाते हैं कि संसार में जो भी प्राकृतिक गतिविधियाँ हो रही हैं, जो व्यवस्था दिखाई देती है और जो जीवन का पोषण हो रहा है, वह सब उनकी दिव्य शक्ति से ही सम्भव है। सम्पूर्ण सृष्टि उनके द्वारा धारण और सञ्चालित की जा रही है इसलिये हमें यह समझना चाहिये कि प्रकृति की प्रत्येक व्यवस्था के पीछे श्रीभगवान् की ही अद्‌भुत शक्ति कार्य कर रही है।

**15.14**

**अहं(वँ) वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां(न्) देहमाश्रितः।**
**प्राणापानसमायुक्तः(फ्), पचाम्यन्नं(ञ्) चतुर्विधम्॥15.14॥**

प्राणियों के शरीर में रहने वाला मैं प्राण-अपान से युक्त वैश्वानर (जठराग्नि) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

**विवेचन**- यहाँ श्रीभगवान् अपनी एक और अद्‌भुत शक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं-
"मैं ही प्राणियों के शरीर में वैश्वानर अग्नि के रूप में स्थित होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।"

शास्त्रों में अग्नि के अनेक रूपों का वर्णन मिलता है। उनमें दावानल अग्नि, बड़वानल अग्नि और वैश्वानर अग्नि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। दावानल अग्नि वह है जो वन में लगती है, अर्थात् जङ्गल की आग। बडवानल अग्नि वह है जिसका वर्णन समुद्र के भीतर स्थित अग्नि के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार वैश्वानर अग्नि वह अग्नि है जो प्राणियों के शरीर में स्थित रहती है, इसे जठराग्नि भी कहा जाता है।

हम प्रतिदिन भोजन करते हैं, जल पीते हैं और विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ ग्रहण करते हैं। इन सबका पाचन शरीर में स्थित इसी जठराग्नि के द्वारा होता है। यदि यह अग्नि ठीक प्रकार से कार्य न करे तो भोजन का पाचन भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारा पाचन-तन्त्र ठीक प्रकार से कार्य नहीं करता। उस समय भोजन पचने में कठिनाई होती है। इसका कारण यह माना जाता है कि जठराग्नि की कार्यक्षमता कम हो गई है।

श्रीभगवान् इस श्लोक में बताते हैं कि भोजन को पचाने वाली यह शक्ति भी वास्तव में उनकी ही शक्ति है। वे स्वयं वैश्वानर अग्नि के रूप में प्रत्येक प्राणी के शरीर में स्थित हैं और प्राण तथा अपान वायु के साथ मिलकर भोजन का पाचन करते हैं।

यहाँ "चतुर्विधम् अन्नम्" से चार प्रकार के भोजन का सङ्केत किया गया है, जो चबाकर खाया जाता है, जो निगलकर ग्रहण किया जाता है, जो चूसकर लिया जाता है तथा जो पीया जाता है। इन सभी प्रकार के आहार का पाचन श्रीभगवान् की शक्ति से ही सम्भव होता है।

श्रीभगवान् इस श्लोक में यह समझाते हैं कि हम जो भी भोजन ग्रहण करते हैं, उसका पाचन केवल हमारी व्यक्तिगत सामर्थ्य से नहीं होता। हमारे शरीर में स्थित वैश्वानर अग्नि के रूप में स्वयं श्रीभगवान् ही यह कार्य सम्पन्न करते हैं इसलिये शरीर की प्रत्येक क्रिया के पीछे परमात्मा की शक्ति कार्य कर रही है, यही इस श्लोक का मुख्य सन्देश है।

**15.15**

**सर्वस्य चाहं(म्) हृदि सन्निविष्टो, मत्तः(स्) स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं(ञ्) च।**

**वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।15।।**

मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मुझसे (ही) स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ। वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला और वेदों को जानने वाला भी मैं (ही हूँ)।

**विवेचन**- यहाँ श्रीभगवान् अपनी सर्वव्यापकता और दिव्य शक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं-
"मैं सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। "प्रत्येक जीव के हृदय में परमात्मा के रूप में मेरा निवास है।"

"**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः"** का अर्थ है कि श्रीभगवान् प्रत्येक प्राणी के हृदय में विद्यमान हैं। वे किसी एक स्थान तक सीमित नहीं हैं बल्कि सबके भीतर परमात्मा रूप से स्थित हैं और सब पर दृष्टि रखते हैं। इसके बाद श्रीभगवान् कहते हैं-

"**मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च"**
अर्थात् स्मरण करने की शक्ति, ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति और भूल जाने की शक्ति भी मुझसे ही प्राप्त होती है।

हम जो कुछ याद रखते हैं, सीखते हैं और समझते हैं, उसके पीछे भी श्रीभगवान् की ही कृपा और शक्ति कार्य करती है। यदि वे स्मरण शक्ति न दें तो हम किसी भी बात को याद नहीं रख सकते। इसी प्रकार जो ज्ञान हमें प्राप्त होता है उसकी मूल शक्ति भी श्रीभगवान् से ही आती है।

श्रीभगवान् यह भी कहते हैं कि भूल जाने की शक्ति भी उन्हीं से प्राप्त होती है। संसार में केवल स्मरण करना ही आवश्यक नहीं होता, कभी-कभी भूलना भी आवश्यक होता है इसलिये स्मृति, ज्ञान और विस्मृति तीनों का आधार परमात्मा ही हैं। इसके आगे श्रीभगवान् कहते हैं-

"**वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः"**, अर्थात् समस्त वेदों का वास्तविक उद्देश्य मुझे जानना है। वेदों में अनेक विषयों का वर्णन है परन्तु उनका अन्तिम लक्ष्य मनुष्य को परमात्मा की ओर ले जाना है। फिर श्रीभगवान् कहते हैं-

"**वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम्**" अर्थात् वेदान्त का रचयिता भी मैं ही हूँ और वेदों को यथार्थ रूप से जानने वाला भी मैं ही हूँ। वेदों का उद्गम भी श्रीभगवान् से है। उनका तत्त्व भी श्रीभगवान् ही जानते हैं और उनका परम उद्देश्य भी श्रीभगवान् की प्राप्ति ही है।

**इस श्लोक में श्रीभगवान् बताते हैं कि वे सभी के हृदय में स्थित हैं। स्मरण शक्ति, ज्ञान और विस्मरण की शक्ति उन्हीं से प्राप्त होती है। साथ ही समस्त वेदों का लक्ष्य भी श्रीभगवान् को जानना है। वे ही वेदान्त के रचयिता और वेदों के वास्तविक ज्ञाता हैं।**

**15.16**

**द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।**
**क्षरः(स्) सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।**

इस संसार में क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) – ये दो प्रकार के ही पुरुष हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर क्षर और जीवात्मा अक्षर कहा जाता है।

**विवेचन-** यहाँ श्रीभगवान् बताते हैं कि इस संसार में दो प्रकार के तत्त्व हैं क्षर और अक्षर।
**क्षर** का अर्थ है जो परिवर्तनशील है, नष्ट होने वाला है और जिसका एक दिन अन्त हो जाता है।
**अक्षर** का अर्थ है  जो अविनाशी है, जिसका कभी नाश नहीं होता और जो सदैव विद्यमान रहता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि इस संसार के समस्त भौतिक शरीर और भौतिक पदार्थ क्षर हैं क्योंकि वे परिवर्तन के अधीन हैं। शरीर

का जन्म होता है वह कुछ समय तक रहता है और अन्त में नष्ट हो जाता है इसलिये शरीर को क्षर कहा गया है। जब किसी जीव की मृत्यु होती है तब उसका शरीर यहीं रह जाता है और समय के साथ नष्ट हो जाता है। इस प्रकार शरीर स्थायी नहीं है, इसलिये वह क्षर तत्त्व है।

इसके विपरीत आत्मा अक्षर है। आत्मा का न कभी जन्म होता है और न कभी मृत्यु होती है। वह शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होती। जब एक शरीर अपना कार्य पूरा कर लेता है तब आत्मा उसे छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है। आत्मा को न अग्नि जला सकती है, न शस्त्र काट सकते हैं और न ही उसका विनाश किया जा सकता है इसलिये आत्मा को अविनाशी और अक्षर कहा गया है।

इस श्लोक में श्रीभगवान् यह समझाते हैं कि शरीर और आत्मा में मूलभूत अन्तर है। शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा शाश्वत है। शरीर क्षर है और आत्मा अक्षर है।

श्रीभगवान् के अनुसार इस संसार में दो तत्त्व प्रमुख रूप से समझने योग्य हैं। क्षर अर्थात् नष्ट होने वाला शरीर तथा अक्षर अर्थात् अविनाशी आत्मा। जो इस भेद को समझ लेता है, वह जीवन के गूढ़ सत्य को समझने की दिशा में आगे बढ़ता है।

**15.17**

**उत्तमः(फ्) पुरुषस्त्वन्यः(फ्), परमात्मेत्युदाहृतः।**
**यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।17।।**

उत्तम पुरुष तो अन्य (विलक्षण) ही है, जो 'परमात्मा'– इस नाम से कहा गया है। (वही) अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर (सबका) भरण-पोषण करता है।

**विवेचन-** श्रीभगवान् कहते हैं कि क्षर और अक्षर, इन दोनों से भी श्रेष्ठ एक और पुरुष है, जिसे परमात्मा कहा जाता है।

पिछले श्लोक में श्रीभगवान् ने क्षर और अक्षर तत्त्वों का वर्णन किया था। क्षर अर्थात् नश्वर शरीर और अक्षर अर्थात् अविनाशी आत्मा। अब श्रीभगवान् बताते हैं कि इन दोनों से भी श्रेष्ठ एक और तत्त्व है, जो सर्वोच्च है। श्रीभगवान् कहते हैं कि वह श्रेष्ठ पुरुष परमात्मा कहलाता है। वही समस्त सृष्टि का स्वामी, नियन्ता और आधार है। वह केवल किसी एक स्थान पर नहीं है बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।

"**यो लोकत्रयमाविश्य**" का अर्थ है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबमें विद्यमान है। तीनों लोकों से तात्पर्य स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक और पाताललोक से है। परमात्मा अपनी शक्ति से सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होकर सबका सञ्चालन करते हैं।

"**बिभर्ति अव्यय ईश्वरः**" का अर्थ है कि वही अविनाशी ईश्वर सम्पूर्ण जगत का पालन-पोषण करते हैं। सभी प्राणियों की रक्षा उनका पालन, उनकी आवश्यकताओं की व्यवस्था तथा सम्पूर्ण सृष्टि का सञ्चालन; उसी परम शक्ति के द्वारा होता है।

**यहाँ श्रीभगवान् अपने विषय में बताते हुए कहते हैं कि आत्मा और प्रकृति से भी श्रेष्ठ मैं ही हूँ। मैं ही परमात्मा हूँ और मैं ही सम्पूर्ण जगत का पालन-पोषण करने वाला अविनाशी ईश्वर हूँ।**

इस श्लोक में श्रीभगवान् यह शिक्षा देते हैं कि शरीर और आत्मा दोनों का अस्तित्व परमात्मा पर आधारित है। परमात्मा ही सबसे श्रेष्ठ, सबसे शक्तिशाली और सम्पूर्ण सृष्टि के पालनकर्ता हैं। तीनों लोकों में जो शक्ति सबको धारण और सञ्चालित कर रही है, वह श्रीभगवान् ही हैं।

**15.18**

**यस्मात्क्षरमतीतोऽहम्, अक्षरादपि चोत्तमः।**
**अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः(फ्) पुरुषोत्तमः।।18।।**

कारण कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' (नाम से) प्रसिद्ध हूँ।

**विवेचन-** श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं क्षर से भी परे हूँ और अक्षर से भी श्रेष्ठ हूँ। इसी कारण संसार और वेदों में मुझे पुरुषोत्तम के नाम से जाना जाता है।

पिछले श्लोकों में श्रीभगवान् ने क्षर, अक्षर और परमात्मा का वर्णन किया था। क्षर अर्थात् नश्वर शरीर और सम्पूर्ण भौतिक जगत तथा अक्षर अर्थात् अविनाशी आत्मा। अब श्रीभगवान् बताते हैं कि वे इन दोनों से भी श्रेष्ठ और सर्वोच्च हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि शरीर, आत्मा और सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ भी विद्यमान है, उन सबका आधार और स्वामी मैं ही हूँ। मैं उन सबसे परे और उनसे भी अधिक महान हूँ इसलिए मुझे पुरुषोत्तम कहा जाता है।

**पुरुषोत्तम शब्द का अर्थ है पुरुषों में उत्तम अर्थात् सबसे श्रेष्ठ, सबसे महान और सर्वोच्च सत्ता।**

श्रीभगवान् सभी शक्तियों, सभी तत्त्वों और सम्पूर्ण सृष्टि के आधार हैं इसलिए वे पुरुषोत्तम कहलाते हैं। चारों वेद- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद भी श्रीभगवान् की इसी सर्वोच्च महिमा का वर्णन करते हैं। वेदों में भी उन्हें परम पुरुष और सर्वोच्च तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

**15.19**

**यो मामेवमसम्मूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।**
**स सर्वविद्भजति मां(म्),सर्वभावेन भारत।।19।।**

हे भरतवंशी अर्जुन ! इस प्रकार जो मोह रहित मनुष्य मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ सब प्रकार से मेरा ही भजन करता है।

**विवेचन**- श्रीभगवान् कहते हैं कि जो व्यक्ति मुझे इस प्रकार पुरुषोत्तम रूप में जान लेता है, वह वास्तव में तत्त्वज्ञानी बन जाता है और सम्पूर्ण भाव से मेरी भक्ति करता है।

"**असम्मूढः**" का अर्थ है जो मोह और भ्रम से मुक्त हो गया हो। ऐसा व्यक्ति जो श्रीभगवान् की वास्तविक महिमा को समझ लेता है, यह जान लेता है कि वे ही सर्वोच्च परमात्मा और समस्त शक्तियों के स्रोत हैं, वह उन्हें पूर्ण श्रद्धा और प्रेम के साथ भजता है।

श्रीभगवान् यह भी समझाते हैं कि उनकी महिमा को जानना और उनकी सर्वोच्चता को स्वीकार करना भी भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण रूप है। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि श्रीभगवान् ही सम्पूर्ण सृष्टि के आधार, पालक और नियन्ता हैं तब उसके हृदय में स्वाभाविक रूप से श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होने लगती है।

इसके विपरीत, जो लोग परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते और केवल बाहरी कारणों को ही सब कुछ मानते हैं, वे श्रीभगवान् के इस दिव्य स्वरूप को नहीं समझ पाते इसलिए वे उस आध्यात्मिक आनन्द और श्रीभगवान् के साथ के सम्बन्ध का अनुभव भी नहीं कर पाते।

श्रीभगवान् इस श्लोक में सिखाते हैं कि उनकी महिमा, उनकी सर्वोच्चता और उनकी दिव्य शक्तियों को समझना भी भक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। जो व्यक्ति उन्हें पुरुषोत्तम के रूप में जानकर श्रद्धा और प्रेम से उनका स्मरण करता है, वह वास्तव में ज्ञानवान है और वही सच्ची भक्ति के मार्ग पर अग्रसर है।

**15.20**

## इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।
## एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।

हे निष्पाप अर्जुन ! इस प्रकार यह अत्यन्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। हे भरतवंशी अर्जुन ! इसको जानकर (मनुष्य) ज्ञानवान् (ज्ञात-ज्ञातव्य) (तथा प्राप्त-प्राप्तव्य) और कृतकृत्य हो जाता है

**विवेचन**- यहाँ श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं हे अनघ! मैंने तुम्हें यह अत्यन्त गोपनीय और रहस्यमय शास्त्र बताया है। यह साधारण ज्ञान नहीं है बल्कि अत्यन्त गूढ़ और श्रेष्ठ ज्ञान है।

श्रीभगवान् अर्जुन को "**अनघ**" कहकर सम्बोधित करते हैं। अनघ का अर्थ है जो पापरहित हो, जो बुरे कर्मों में प्रवृत्त न हो। श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि मैंने तुम्हें यह परम रहस्य इसलिये बताया है क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो और तुम्हारा हृदय निर्मल है।

यह ज्ञान ऐसा नहीं है जिसे श्रीभगवान् प्रत्येक व्यक्ति को सहज ही प्रदान कर दें। यह अत्यन्त मूल्यवान आध्यात्मिक ज्ञान है जिसे अर्जुन को विशेष कृपा से प्रदान किया गया है। इसके बाद श्रीभगवान् कहते हैं-

"**एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्**"
अर्थात् जो इस ज्ञान को यथार्थ रूप से समझ लेता है वह वास्तव में बुद्धिमान बन जाता है। संसार में अनेक प्रकार की विद्याएँ और जानकारियाँ प्राप्त की जा सकती हैं किन्तु आत्मा, परमात्मा और जीवन के वास्तविक उद्देश्य का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला ही सच्चे अर्थों में बुद्धिमान कहलाता है। ऐसा व्यक्ति जीवन के गूढ़ रहस्यों को समझ लेता है। उसके मन में बार-बार यह भावना नहीं आती कि मेरे पास यह नहीं है या वह नहीं है। वह भीतर से सन्तुष्ट रहने लगता है। उसके जीवन में एक प्रकार की आन्तरिक शान्ति और तृप्ति का अनुभव होने लगता है। श्रीभगवान् आगे कहते हैं-

"**कृतकृत्यश्च भारत**"
अर्थात् ऐसा मनुष्य अपने जीवन को सफल मान सकता है। उसे अनुभव होने लगता है कि उसे जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझ में आ गया है और जो जानना आवश्यक था, वह जान लिया गया है।

इस प्रकार पन्द्रहवें अध्याय के अन्त में श्रीभगवान् बताते हैं कि यह अत्यन्त गोपनीय ज्ञान है, जो इसे श्रद्धापूर्वक समझ लेता है, वह बुद्धिमान बन जाता है। वह भीतर से सन्तुष्ट हो जाता है और अपने जीवन को सफल अनुभव करता है।

हमें भी इस अध्याय से प्राप्त शिक्षाओं में से किसी एक श्रेष्ठ गुण या सदाचार को अपने जीवन में अपनाने का प्रयास करना चाहिये। यदि हम एक भी अच्छी बात को नियमित रूप से व्यवहार में लाना प्रारम्भ कर दें तो धीरे-धीरे हमारा जीवन अधिक श्रेष्ठ, शान्त और श्रीभगवान् के निकट होता चला जायेगा। यही इस अध्याय की शिक्षाओं को जीवन में उतारने का वास्तविक लाभ है।

इसी के साथ आज का विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्नोत्तर आरम्भ हुए।

### प्रश्नोत्तर

**प्रश्नकर्ता**- आकृति दीदी
**प्रश्न**- सोल (Soul) आत्मा का क्या अर्थ होता है?
**उत्तर**- जिस प्रकार बल्ब में बिजली होती है, उसी प्रकार शरीर में आत्मा होती है। यदि बिजली चली जाये तो बल्ब नहीं जल सकता इसी प्रकार सोल अर्थात् आत्मा के बिना यह शरीर भी समाप्त हो जाता है। आत्मा हमारे शरीर के अन्दर एक ऐसी शक्ति है जो शरीर को काम करने के लायक बनाती है। जिस प्रकार बल्ब के अन्दर बिजली रहने पर ही वह काम करता है, उसी प्रकार शरीर के अन्दर आत्मा रहने पर ही शरीर काम करता है।

**प्रश्नकर्ता**- अर्जुन भैया
**प्रश्न**- दीदी मुझे बीसवां श्लोक समझ में नहीं आया। क्या आप मुझे दोबारा समझा देंगी?
**उत्तर**- बीसवाँ श्लोक है-
**इति गुह्यतमं(म्) शास्त्रम्, इदमुक्तं(म्) मयानघ।**
**एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।।20।।**
श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन यह मैंने तुम्हें अति गोपनीय बताया है। अति गोपनीय का तात्पर्य है, ऐसा रहस्य जो किसी को बताया न जा सके, जैसे हमारे भी रहस्य होते हैं। हम कहते हैं कि यह बात मैं किसी को नहीं बताऊँगा, अगर पता लग गया तो फिर क्या होगा? मेरी तो (insult) किरकिरी हो जाएगी, ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा, ऐसा हम सोचते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि यह जो अति गोपनीय ज्ञान है वह मैं सबको नहीं बताता हूँ, तुम्हें बताया है और क्यों बताया है? क्योंकि तुम अनघ हो, तुम पाप नहीं करते हो। अनघ का अर्थ है कि तुम पाप नहीं करते हो, तुम बुरे काम नहीं करते हो।

श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन यह ज्ञान मैं तुमको दे रहा हूँ क्योंकि तुम मेरे बड़े प्रिय हो और तुम निष्पाप हो, तुम कोई पाप नहीं करते हो, तुम कोई बुरा काम नहीं करते हो।

श्रीभगवान् कहते हैं कि यह जो ज्ञान मैंने तुम्हें दिया है, इस ज्ञान को जो भी व्यक्ति समझ लेगा, कोई बच्चा होगा, बड़ा होगा या कोई बूढ़ा होगा, जो भी समझ लेगा, वह बुद्धिमान हो जायेगा। फिर वह एकदम सन्तुष्ट हो जाएगा। फिर उसको कोई लालच नहीं रहेगा और उसका जीवन शान्त और सन्तुष्ट हो जायेगा।

इसके उपरान्त हरि नाम सङ्कीर्तन और श्रीहनुमान-चलीसा पाठ के साथ आज के सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

**ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे**
**श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥**

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'पुरूषोत्तमयोग' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

---

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

**https://gift.learngeeta.com/**

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

**https://vivechan.learngeeta.com/**

---

**|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||**

**||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||**